

संपादकीय

इंटरनेट की रीढ़ में दसर दुनिया में हड़कंप

दुनिया का बड़ा बैंक हो या छोटी किराना दुकान की वेबसाइट, सरकार का पोर्टल हो या गांव के स्कूल का पेज, आज सब कुछ इंटरनेट पर निर्भर है। इसी डिजिटल व्यवस्था की एक प्रमुख कड़ी पीएचपी में दो गंभीर सुरक्षा खामियों की खबर ने दुनिया भर में चिंता बढ़ा दी है। टेक कंपनियां सुरक्षा अपडेट जारी करने में जुट गईं और साइबर सुरक्षा एजेंसियां सतर्क हो गईं। यह घटना बताती है कि डिजिटल व्यवस्था की मजबूती केवल उसकी सुविधाओं से नहीं, बल्कि उसकी सुरक्षा से तय होती है।

सरकारी वेबसाइटों को अस्थायी रूप से बंद करना डर नहीं, बल्कि सावधानी का कदम हो सकता है। इसे घर के मुख्य दरवाजे के टूटे ताले से समझ सकते हैं। जब तक नया ताला नहीं लगता, दरवाजे को सुरक्षित रखना जरूरी है। इसी तरह, किसी वेबसाइट में गंभीर सुरक्षा खामी मिलने पर उसे अस्थायी रूप से बंद करना या उसकी सुविधाओं को सीमित करना नुकसान से बचा सकता है। यदि हैकर सरकारी सर्वर में घुस जाएं, तो नागरिकों के निजी दस्तावेजों और संवेदनशील जानकारी के दुरुपयोग का खतरा बढ़ सकता है। इसका खतरा केवल बड़ी कंपनियों तक सीमित नहीं है। छोटे व्यापारियों, ब्लॉग संचालकों और कोचिंग संस्थानों की अनेक वेबसाइटें पुराने सॉफ्टवेयर पर चलती हैं, जिन्हें लंबे समय से अपडेट नहीं किया गया है। कमजोर सुरक्षा वाले ऐसे सर्वर साइबर अपराधियों के आसान निशाने बन सकते हैं। इसके बाद फिर सैद्धांतिक और बैंक जैसी दिखने वाली वेबसाइटों के जरिए लोगों को ठगने की कोशिश होती है। इसलिए वेबसाइट संचालकों को सुरक्षा अपडेट तुरंत लागू करने और आम लोगों को अनजान लिंक से बचने की जरूरत है। दोहरी प्रमाणीकरण व्यवस्था अपनाना और बैंक का सही वेब पता जांचकर ही लॉगिन करना भी जरूरी है।

यह घटना हमें एक कड़वा सच दिखाती है। हम इंटरनेट की सुविधाओं का भरपूर उपयोग करते हैं, लेकिन उसकी सुरक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। पीएचपी जैसी व्यापक तकनीक का इस्तेमाल करने वाली संस्थाओं और वेबसाइट संचालकों को नियमित अपडेट, सुरक्षा जांच और कमजोरियों की समय पर पहचान सुनिश्चित करनी चाहिए। केवल वेबसाइट बना देना पर्याप्त नहीं है, उसे सुरक्षित बनाए रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। भारत जैसे देश में डिजिटल इंडिया की सफलता के लिए साइबर सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। सरकारी विभागों की वेबसाइटों का नियमित साइबर ऑडिट हो, सुरक्षा खामियों को दूर करने की समयसीमा तय की जाए और लापरवाही के लिए जवाबदेही सुनिश्चित हो। टेक कंपनियों को भी पुराने असुरक्षित संस्करणों के जोखिम के बारे में स्पष्ट जानकारी देनी चाहिए।

इंटरनेट अब केवल सुविधा नहीं, बल्कि जीवन की जरूरत बन चुका है। बैंकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य और सरकारी सेवाएं इससे जुड़ी हैं। इसलिए इसकी सुरक्षा में चुक का असर व्यापक हो सकता है। सरकारों, तकनीकी कंपनियों और आम उपयोगकर्ताओं, सभी को अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। मजबूत पासवर्ड, नियमित अपडेट और दोहरी सुरक्षा अब विकल्प नहीं, आवश्यकता हैं। इंटरनेट में सेंध का यह घटना आखिरी नहीं है। जैसे-जैसे दुनिया डिजिटल होगी, सुरक्षा चुनौतियां भी बढ़ेंगी। सवाल यह नहीं है कि अगली खामी कब सामने आएगी, बल्कि यह है कि हम उससे निपटने के लिए कितने तैयार हैं। यदि इस चेतावनी को गंभीरता से लिया गया, तो यह संकट भविष्य की डिजिटल सुरक्षा मजबूत करने का अवसर बन सकता है।

आजकल

बैंकिंग का सुरक्षा चक्र अब बैंक कभी नहीं सोएगा

भुवनेश्वर में बना भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) का नया डाटा सेंटर डिजिटल बैंकिंग की निरंतरता और सुरक्षा मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटित यह परिसर 18.55 एकड़ में फैला है और इसमें चार आधुनिक डाटा सेंटर बनाए गए हैं। आपदा रिकवरी और बैकअप सेक्टर के रूप में विकसित यह परिसर मुख्य सेंटर में तकनीकी खराबी या आसपाद आने पर बैंकिंग सेवाओं को सुचारु बनाए रखने में मदद करेगा। यह भरोसे की दूसरी सुरक्षा पंक्ति है। भुवनेश्वर का चयन केवल तकनीकी नहीं, बल्कि रणनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। भौगोलिक दूरी और वैकल्पिक व्यवस्था किसी बड़ी आपदा के दौरान सेवाओं को निरंतरता बनाए रखने में मदद करती है। इस परियोजना से ओडिशा में तकनीकी निवेश और युवाओं के लिए रोजगार के अवसर भी बढ़ सकते हैं।

इस परिसर में साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण संस्थान भी है। डिजिटल युग में साइबर हमलों का मुकाबला केवल तकनीक से नहीं, बल्कि प्रशिक्षित विशेषज्ञों से भी करना होगा। यहां बैंक अधिकारियों को साइबर धोखाधड़ी पहचानने, संवेदनशील डाटा सुरक्षित रखने और डिजिटल हमलों से निपटने का प्रशिक्षण दिया जा सकेगा। मशीनों के साथ मानव संसाधन को सक्षम बनाना भी जरूरी है। वित्तीय ङ्ग की सुरक्षा के लिए देश में मजबूत बुनियादी ढांचा विकसित करना डिजिटल आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इससे संवेदनशील जानकारी पर नियंत्रण मजबूत करने और विदेशी तकनीकी प्रणालियों पर निर्भरता घटाने में मदद मिल सकती है। हालांकि, चुनौतियां भी कम नहीं हैं। इतने बड़े परिसर के लिए निर्बाध बिजली, प्रभावी शीतलन और मजबूत सुरक्षा व्यवस्था जरूरी होगी। खुद यह सेंटर भी साइबर अपराधियों के निशाने पर हो सकता है। इसलिए अनिवार्य सुरक्षा परीक्षण और प्रशिक्षित कर्मचारियों की उपलब्धता अनिवार्य है। कृल मिलाकर, यह डाटा सेंटर केवल इमारत नहीं, बल्कि डिजिटल बैंकिंग में भरोसा मजबूत करने का प्रयास है। भुवनेश्वर में स्थापित यह व्यवस्था भारत की वित्तीय प्रणाली को अधिक सुरक्षित और संकटों से निपटने में सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

भोपाल के मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय में इन दिनों एक अनोखा दृश्य है। लकड़ी और कपड़े से बने बेजान पुतले बोल रहे हैं, हंस रहे हैं, गीत गा रहे हैं और कहानी सुना रहे हैं। चार दिवसीय पुतल समारोह कला के एक ऐसे रूप को फिर से मंच पर ला रहा है, जिसे हम बचपन में मेले में देखते थे, लेकिन शहर की भीड़ में भूल गए। इस समारोह का आयोजन इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली और डॉल्स थिएटर, कोलकाता के सहयोग से हो रहा है। मुंबई के प्रसिद्ध वेंट्रिलोक्विस्ट सत्यजीत रामदास पाध्ये और उनके साथियों ने मंच पर ‘बोलती कठपुतलियों के किस्से’ नामक प्रस्तुति दी है। छड़, दस्ताना, धागा और आधुनिक शैली की 15 से अधिक कठपुतलियों के जरिए चुटकुले, कविताएं और गीत पेश किए गए।

समारोह में 100 से अधिक भारतीय और विदेशी कठपुतलियों की प्रदर्शनी भी लगी है। बच्चों के लिए कठपुतली निर्माण और संचालन की कार्यशाला भी रखी गई है, जिसमें 50 से अधिक बच्चों ने हिस्सा लिया है। कठपुतली केवल खेल नहीं, संस्कृति की भाषा है। कठपुतली कला को अक्सर लोग बच्चों का खेल समझते हैं, लेकिन हकीकत यह है कि यह भारत की सबसे पुरानी संचार कलाओं में से एक है। जब टीवी नहीं था, अखबार नहीं था, तब कठपुतली ही गांव-गांव में खबर,

मक्का रक्षा गठबंधन की हकीकत और ‘मुस्लिम नाटो’ का भ्रम

अगस्त

में जब तुर्किये, सऊदी अरब और पाकिस्तान ने मक्का रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, तब इसे इस्लामी दुनिया का नाटो बताया गया था। कहा गया था कि यह तीनों देशों के बीच सैन्य तालमेल और रक्षा सहयोग को नया आयाम देगा। तय हुआ था कि किसी एक देश पर हमला तीनों पर हमला माना जाएगा और तीनों देशों की सेनाएं मिलकर जवाब देंगी। किसी बाहरी हमले की स्थिति में तीनों देश एक-दूसरे की सुरक्षा के लिए साथ खड़े होंगे।

बड़े-बड़े बयान आए थे कि अब मध्य पूर्व का शक्ति संतुलन बदल जाएगा। अब कोई भी सऊदी अरब की ओर आंख उठाकर नहीं देखेगा, क्योंकि उसके पीछे पाकिस्तान का परमाणु बम और तुर्किये की नाटो सेना खड़ी है।

लेकिन दो महीने भी नहीं बीते और यह गुब्बारा फट गया। हूती विद्रोहियों ने सऊदी अरब के तेल पट्टिकाओं और हवाई अड्डों पर हमले तेज कर दिए। सऊदी अरब ने अपने नए बने भाइयों की ओर देखा, तो दोनों ने मुंह फेर लिया। तुर्किये के रक्षा मंत्री यासर गुलर ने एक साक्षात्कार में साफ कह दिया कि उनका देश हूती विद्रोहियों के खिलाफ लड़ाई में शामिल नहीं होगा। उनका कहना था कि तुर्किये का मकसद सऊदी अरब की सुरक्षा मजबूत करना और दुश्मनों को हमला करने से रोकना होगा, लेकिन सीधे युद्ध में शामिल होना नहीं।

इससे पहले पाकिस्तान भी यही कह चुका था। ‘यश्शलम’ और ‘रिपोर्ट’ के मुताबिक, पाकिस्तान ने कहा था कि उसकी सेना किसी दूसरे देश की जमीन पर युद्ध में शामिल नहीं होगी। रॉयटर्स के मुताबिक, सऊदी अरब ने मजबूत करवा और दुश्मनों को अमेरिकी सैन्य हमले की मांग कर दी। यानी जो समझौता मक्का में अल्लाह के नाम पर हुआ था, वह पहले इम्तिहान में ही हवा-हवाई साबित हुआ।

पाकिस्तान का पलायन परमाणु ताकत की पोल खोलता है। पाकिस्तान खुद की इस्लाम का किला कहता है। उसकी सेना कहती है कि वह हरम शरीफ की हिफाजत के लिए जान दे देगी, लेकिन सच क्या है? जब सऊदी अरब पर हूती ड्रोन गिर रहे हैं, तब पाकिस्तानी जनरल राबलपिंडी में बैठे हैं और कह रहे हैं कि वे किसी और की

कागज पर इस्लामी नाटो, जमीन पर सन्नाटा

जमीन पर नहीं लड़ेंगे।

इसके पीछे तीन बड़े कारण हैं। पहला, आर्थिक निर्भरता। पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था आज अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के कर्ज पर चल रही है। उसके पास अपने लोगों को खिलाने के लिए पैसे नहीं हैं। वह सऊदी अरब से कर्ज मांगता है, तो उसके लिए लड़ना कैसे? मालिक के लिए नौकर लड़ता है, लेकिन जब नौकर खुद भूखा हो, तो वह तलवार नहीं उठाता।

दूसरा कारण ईरान का डर है। हूती विद्रोहियों को ईरान का समर्थन हासिल है। अगर पाकिस्तान हूतियों के खिलाफ सऊदी अरब के लिए लड़ता है, तो इसका सीधा मतलब ईरान से दुश्मनी मोल लेना है। ईरान पाकिस्तान का पड़ोसी है। बलूचिस्तान में पहले ही आग लगी है। ईरान से दुश्मनी लेकर पाकिस्तान दूसरा मोर्चा नहीं खोल सकता।

तीसरा कारण सेना की थकान है। पाकिस्तान की सेना पहले से ही तीन मोर्चों पर फंसी है। एक तरफ भारत के साथ सीमा पर तनाव है, दूसरी तरफ खेबर पख्तूनख्वा में तहरीक-ए-तालिबान तरफ बलूचिस्तान में बलूच विद्रोही सक्रिय हैं। अब वह चौथा मोर्चा यमन में नहीं खोलना चाहती। इसलिए पाकिस्तान का इस्लामी भाईचारा केवल भाषणों में है। जमीन पर वह केवल पैसा लेना जानता है, खून देना नहीं।

तुर्किये का रवैया भी उसके खलीफा बनने के सपने और कारोबारी सोच को उजागर करता है। तुर्किये के राष्ट्रपति एर्दोगन का सपना है कि वह मुस्लिम दुनिया के एक खलीफा बनें। इसीलिए वह हर जगह अपनी भूमिका बढ़ाने की कोशिश करते हैं, कभी अजरबैजान में, कभी लीबिया में, कभी सीरिया में और अब सऊदी अरब में। मक्का समझौता भी इसी ख्वाब का हिस्सा था। तुर्किये दिखाना चाहता था कि सऊदी अरब की सुरक्षा अब

उसके हाथ में है और वही असली बड़ा भाई है। लेकिन जैसे ही लड़ाई की बारी आई, एर्दोगन ने अपने रक्षा मंत्री से कहलवा दिया कि वे नहीं लड़ेंगे।

यह बयान बहुत शातिर है। उनका कहना है कि वे सऊदी अरब की सुरक्षा मजबूत करेंगे। यानी वे उसे ड्रोन, रडार और प्रशिक्षण देंगे, लेकिन अपने सैनिकों को मरने नहीं भेजेंगे। तुर्किये का रक्षा उद्योग आज उसके लिए सबसे बड़ा हथियार है। वह बेराक्टर ड्रोन बेचकर अरबों डॉलर कमा रहा है। सऊदी अरब एक बड़ा ग्राहक है। इसलिए तुर्किये उसे नाराज भी नहीं करना चाहता और ईरान से लड़कर अपना बाजार भी खराब नहीं करना चाहता। यानी यह रक्षा समझौता नहीं, हथियारों की दुकान का करार था। तुर्किये ने सऊदी अरब को ग्राहक बनाया था, साथी नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि तुर्किये नाटो का सदस्य है। वह अमेरिका से तालमेल के बिना कोई बड़ी जंग लड़ने में कई रणनीतिक बाधाओं का सामना कर सकता है। अमेरिका भी नहीं चाहता कि तुर्किये यमन में उलझे, क्योंकि वह खुद इस संघर्ष में सीधे उलझने से बचना चाहता है।

इस पूरे खेल में सबसे बड़ा नुकसान सऊदी अरब का है। उसके पास दुनिया के विशाल तेल भंडार हैं और पर्याप्त आर्थिक संसाधन भी हैं, लेकिन उसकी सुरक्षा संबंधी चुनौतियां सरकार हैं। उसकी सेना के पास अमेरिकी हथियार हैं, लेकिन जमीनी लड़ाई का अनुभव सीमित है। पिछले दस साल से सऊदी अरब यमन में

हूतियों के खिलाफ संघर्ष में उलझा रहा है, लेकिन निर्णायक सफलता हासिल नहीं कर सका। हूतियों के पास न कोई बड़ी वायु सेना है, न कोई विशाल टैंक बंडा। उनके पास ईरान से मिले सस्ते ड्रोन और मिसाइलें हैं, लेकिन इन्हीं ने सऊदी अरब की महंगी वायु रक्षा प्रणालियों के सामने गंभीर चुनौती खड़ी की है। अमेरिका ने भी सऊदी अरब को कई बार निराश किया है। जब

सऊदी के तेल टिकानों पर हमला हुआ, तो उसकी सुरक्षा को लेकर अमेरिकी प्रतिबद्धताओं पर सवाल उठे। इसी कारण सऊदी अरब ने पाकिस्तान और तुर्किये का सहारा लिया। लेकिन अब उसे एहसास हो रहा है कि यह सहारा उतना मजबूत नहीं है, जितना समझा गया था। आज सऊदी अरब फिर उसी स्थिति में खड़ा है, जहां वह पांच साल पहले था, सुरक्षा संबंधी चिंताओं से घिरा हुआ और हूती ड्रोन के खतरे का सामना करता हुआ। आखिर ‘मुस्लिम नाटो’ क्यों नहीं चल सकता? दुनिया में नाटो इसलिए काम करता है, क्योंकि उसके सदस्य देशों के बीच साझा सुरक्षा प्रतिबद्धताएं, संस्थागत सैन्य तालमेल और सामूहिक रक्षा की व्यवस्था है। मक्का समझौते में इन देशों के बीच ऐसी एकजुटता कितनी मजबूत है, यह सवाल अब सामने है। सऊदी अरब की सबसे बड़ी सुरक्षा चिंता ईरान है, पाकिस्तान की रणनीतिक प्राथमिकताओं में भारत प्रमुख है और तुर्किये की चुनौतियों में कुर्द संगठनों तथा ग्रीस के साथ तनाव शामिल हैं। तीनों देश अलग-अलग दिशाओं में देख रहे हैं, तो एक साथ कैसे लड़ेंगे?

बराबरी का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। इस गठबंधन में आर्थिक निर्भरता और राजनीतिक हितों का असंतुलन है। सऊदी अरब आर्थिक सहायता देता है, जबकि पाकिस्तान उससे वित्तीय मदद लेता है। लेकिन आर्थिक सहायता अपने आप सैन्य प्रतिबद्धता की गारंटी नहीं बन सकती। सऊदी अरब

सरकारी पर भरोसा नहीं, निजी में खर्च इलाज से बड़ा

नेशनल सैंपल सर्वे के ताजा आंकड़ों ने स्वास्थ्य

व्यवस्था की एक असहज तथ्यो सामने रखी है। सरकारी अस्पताल में भर्ती होने पर औसत खर्च छह हजार रुपये के आसपास है, वहीं निजी अस्पताल में यही खर्च पचपन हजार रुपये तक पहुंच जाता है। यानी लगभग नौ गुना अंतर। फिर भी देश का बड़ा हिस्सा इलाज के लिए निजी अस्पतालों का रुख कर रहा है। शहरी इलाकों में तीन-चौथाई से ज्यादा और ग्रामीण इलाकों में दो-तिहाई के करीब मरीज बिना भर्ती वाले इलाज के लिए भी निजी क्लिनिक जा रहे हैं।

ये आंकड़े बताते हैं कि लोग कीमत देखकर चुन रहे हैं, बल्कि भरोसा देखकर अस्पताल नहीं रहे हैं। सस्ता होना ही काफी नहीं है, उपलब्ध और विश्वसनीय होना ज्यादा जरूरी है।

ग्रामीण और शहरी भरोसे में इतना फर्क क्यों है? रिपोर्ट में राज्यों के बीच का अंतर भी बहुत कुछ कहता है। ओडिशा में 61 प्रतिशत लोग सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भर हैं, जबकि पंजाब में यह आंकड़ा केवल 15 प्रतिशत के आसपास है। ग्रामीण ओडिशा में बिना भर्ती वाले 60 प्रतिशत से ज्यादा मामलों में लोग सरकारी केंद्रों पर गए हैं। तमिलनाडु में शहरी सरकारी केंद्र में बिना भर्ती इलाज का औसत खर्च 47 रुपये है, जबकि बिहार में यही खर्च 830 रुपये है। निजी क्लिनिक में केरल में औसत खर्च 834 रुपये और बिहार में 3,509 रुपये तक है। सरकारी स्वास्थ्य सेवा की कीमत एक समान नहीं है। कहीं यह सप्चुच मुफ्त के करीब है, तो कहीं पच्ची मुफ्त है, लेकिन दवा और जांच बाहर से करानी पड़ती है। इसलिए एक खर्च बढ़

सस्ता इलाज काफी नहीं, सरकारी अस्पतालों को भरोसेमंद बनाना भी जरूरी

जाता है। सरकारी अस्पताल सस्ता है, पर वहां इलाज कराना आसान नहीं है। आम आदमी के मन में सरकारी अस्पताल की छवि क्या है? सुबह चार बजे से लाइन, डॉक्टर दोपहर में आएगा, पच्ची के लिए धक्का-मुक्की, जांच के लिए दूसरी लाइन, दवा के लिए तीसरी लाइन और फिर कहा जाएगा कि यह दवा बाहर से ले आओ। एक गरीब किसान के लिए समय भी पैसा है। वह खेत छोड़कर जिला अस्पताल जाता है, पूरा दिन लाइन में खड़ा रहता है, तो उसकी दिहाड़ी भी जाती है। ऊपर से डॉक्टर ने दो मिनट में देखकर अगला नंबर बुला लिया। निजी अस्पताल में यही किसान जाता है, तो तुरंत नंबर आता है। डॉक्टर दस मिनट तक उसकी बात सुनता है, जांच वहीं हो जाती है। उसे लगता है कि इलाज महंगा है, लेकिन कम से कम सम्मान तो मिल रहा है। इसीलिए वह कर्ज लेकर भी निजी अस्पताल चला जाता है। यह मजबूरी का चुनाव है, पसंद का नहीं। नौ गुना खर्च गरीब को और गरीब बना रहा है। जब ग्रामीण इलाके में एक परिवार निजी अस्पताल में 47 हजार रुपये खर्च करता है, तो उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती है या साहूकार से ब्याज पर पैसा लेना पड़ता है। शहर में 54 हजार रुपये का खर्च मध्यम वर्ग की दो महीने की कमाई के बराबर है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन पहले ही कह चुका है कि भारत में हर साल करोड़ों लोग केवल इलाज के खर्च के कारण गरीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं। सरकार कहती है कि आयुष्मान भारत से पांच लाख रुपये तक की मुफ्त इलाज मिल रहा है, लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि कई निजी अस्पताल आयुष्मान के अस्पतालों में आयुष्मान का कार्डटर भी कई बार बंद मिलता है। बीमारी बढ़ी है, लेकिन भरोसा क्यों नहीं बढ़ा? पिछले सात वर्षों में पिछले 15 दिनों के दौरान बीमार होने की जानकारी देने वालों का अनुपात बढ़ा है। ग्रामीण इलाकों में यह 6.8 से बढ़कर 12.2 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 9.1 प्रतिशत से ज्यादा हो गया है। मतलब लोग अब बीमारी छिपा नहीं रहे, बल्कि बता रहे हैं, लेकिन इलाज के लिए सरकारी तंत्र पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। 2017-18 से 2025 के बीच सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर लोगों का भरोसा बढ़ना चाहिए था, लेकिन आंकड़े बताते हैं

कि निजी अस्पतालों की ओर झुकाव बना हुआ है। इसका एक कारण निवेश का तरीका है। सरकार ने बड़े-बड़े मेडिकल कॉलेज और जिला अस्पतालों की इमारतें तो बना दीं, लेकिन अंदर डॉक्टरों, नर्सों और दवाओं की आपूर्ति नहीं बढ़ाई। एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की इमारत चमक रही है, लेकिन वहां लैब

केवल इलाज के खर्च के कारण गरीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं।

सरकार कहती है कि आयुष्मान भारत से पांच लाख रुपये तक की मुफ्त इलाज मिल रहा है, लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि कई निजी अस्पताल आयुष्मान के अस्पतालों में आयुष्मान का कार्डटर भी कई बार बंद मिलता है। बीमारी बढ़ी है, लेकिन भरोसा क्यों नहीं बढ़ा? पिछले सात वर्षों में पिछले 15 दिनों के दौरान बीमार होने की जानकारी देने वालों का अनुपात बढ़ा है। ग्रामीण इलाकों में यह 6.8 से बढ़कर 12.2 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 9.1 प्रतिशत से ज्यादा हो गया है। मतलब लोग अब बीमारी छिपा नहीं रहे, बल्कि बता रहे हैं, लेकिन इलाज के लिए सरकारी तंत्र पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। 2017-18 से 2025 के बीच सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर लोगों का भरोसा बढ़ना चाहिए था, लेकिन आंकड़े बताते हैं

कि निजी अस्पतालों की ओर झुकाव बना हुआ है। इसका एक कारण निवेश का तरीका है। सरकार ने बड़े-बड़े मेडिकल कॉलेज और जिला अस्पतालों की इमारतें तो बना दीं, लेकिन अंदर डॉक्टरों, नर्सों और दवाओं की आपूर्ति नहीं बढ़ाई। एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की इमारत चमक रही है, लेकिन वहां लैब

टেকनीशियन नहीं है, तो मरीज को जांच के लिए 20 किलोमीटर दूर जाना पड़ेगा। वह ऐसा क्यों करेगा? ओडिशा में 61 प्रतिशत निर्भरता कोई जादू नहीं है। वहां पिछले कुछ वर्षों में राज्य सरकार ने सरकारी अस्पतालों में मुफ्त दवा और मुफ्त जांच की योजनाओं को गंभीरता से लागू किया, डॉक्टरों की तैनाती के लिए विशेष भत्ता दिया और मरीजों के खाने तक की व्यवस्था की। जब मरीज को लगा कि सरकारी अस्पताल में भी साफ बिस्तर मिल रहा है, दवा मिल रही है और डॉक्टर समय दे रहा है, तो वह वहीं रुक गया। पंजाब में, जहां सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भरता सबसे कम है, वहां भी इमारतें हैं, लेकिन कर्मचारियों की कमी और दवाओं की अनियमित आपूर्ति के कारण लोग निजी अस्पतालों में जा रहे हैं।

इस समस्या का हल केवल आयुष्मान काई बांटना नहीं है। हल है सरकारी व्यवस्था को भरोसेमंद बनाना। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को सचमुच चौबीस घंटे

तुर्किये पर पूरी तरह भरोसा नहीं करता, क्योंकि तुर्किये मुस्लिम ब्रदरहुड का समर्थन करता रहा है, जिसे सऊदी राजशाही अपने हितों के लिए चुनौती मानती है। पाकिस्तान की अपनी मजबूरियां और प्राथमिकताएं हैं। भरोसे की कमी में साझा रक्षा व्यवस्था मजबूत नहीं हो सकती। नेतृत्व की लड़ाई भी कम नहीं है। तीनों देश मुस्लिम दुनिया में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं। सऊदी अरब के पास मक्का और मदीना के कारण धार्मिक महत्व है। तुर्किये अपने ऐतिहासिक उस्मानी साम्राज्य की विरासत से प्रेरणा लेता है, जबकि पाकिस्तान अपनी परमाणु शक्ति को रणनीतिक ताकत मानता है। जब तीनों देश नेतृत्व की आकांक्षा रखते हों, तो साझा सैन्य रणनीति पर सहमति बनाना आसान नहीं होता।

फिराये की फौज से काबा की हिफाजत नहीं होती। मक्का रक्षा समझौते की सीमाएं एक ऐतिहासिक सकार की सुझा खुरदी नहीं जाती, बल्कि मजबूत संस्थाओं, भरोसे और साझा हितों से बनाई जाती हैं। सऊदी अरब ने सोचा होगा कि पाकिस्तान को आर्थिक मदद देकर उसकी सैन्य ताकत का भरोसेमंद साथ हासिल किया जा सकता है, लेकिन किसी देश की सेना की प्रतिबद्धता केवल आर्थिक लेन-देन से तय नहीं होती। धर्म के नाम पर बनाया गया कोई भी सैन्य गठबंधन तब तक प्रभावी नहीं हो सकता, जब तक उसके पीछे राष्ट्रीय हितों की एकता न हो। इस्लाम के नाम पर नारे लगाना आसान है, लेकिन उन नारों के लिए कोई अपने सैनिकों को युद्ध में भेजने का फैसला आसानी से नहीं करता।

आज तुर्किये और पाकिस्तान के रुख ने दिखा दिया है कि धार्मिक एकजुटता के दावे और वास्तविक सैन्य प्रतिबद्धताएं अलग-अलग चीजें हैं। सऊदी अरब को भी समझना होगा कि आखिरकार अपनी सुरक्षा के लिए उसे अपनी सैन्य क्षमता और रणनीतिक तैयारी पर ही सबसे ज्यादा भरोसा करना होगा। पाकिस्तान और तुर्किये का साथ अपने आप में युद्ध में उतरने की गारंटी नहीं है। जिसे संयुक्त रक्षा का मजबूत समझौता बताया गया था, उसकी विश्वसनीयता पर अब गंभीर सवाल खड़े हो गए हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बेजान में जान फूंकती बोलती कठपुतलियां...

किस्सा, कला और विरासत का संगम, भोपाल के जनजातीय संग्रहालय में जब पुतले बोलने लगे

खान की पानी फाउंडेशन के लिए कठपुतली से जुड़ा काम कर चुके हैं। इसका अर्थ है कि कठपुतली केवल मेले तक सीमित नहीं है, वह सामाजिक संदेश का माध्यम भी बन सकती है। सोचिए, यदि स्वच्छता, नशामुक्ति और बेटी बचाओ जैसे अभियानों को कठपुतली के जरिए गांव-गांव पहुंचाया जाए, तो असर कितना गहरा होगा। कठपुतली डराती नहीं, हंसाते हुए सिखाती है। डिजिटल युग में कठपुतली का भविष्य खत्म नहीं, बल्कि और व्यापक हो सकता है। यूट्यूब और इंस्टाग्राम पर कठपुतली कार्यक्रमों को दर्शक मिल रहे हैं। बच्चे विदेशी कार्टून के साथ देसी पुतलों की बातों पर भी हंसते हैं।

भोपाल में सजा यह पुतलु समारोह केवल चार दिन का आयोजन नहीं है। यह याद दिलाने का मौका है कि भारत की असली ताकत उसकी लोक कलाओं में है। कठपुतली कला हमें सिखाती है कि बोलने के लिए जुबान ही नहीं, जन्मा चाहिए और जन्मा हो, तो लकड़ी का पुतला भी बोलने लगता है।

तीन पीढ़ियों से इस कला को सहेज रहे पाध्ये परिवार की कहानी बताती है कि विरासत मांगने से नहीं, सहेजने से बचती है। यदि हम अपने बच्चों को मोबाइल के साथ-साथ कठपुतली भी थमाएंगे, तो हम उन्हें केवल मॉनटर नहीं, बल्कि संस्कृति का एक किस्सा भी थमाएंगे, जो सदियों तक बोलेगा, हंसेगा और सिखाता रहेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)